॥ श्रीः ॥

विद्याभवन राष्ट्रभाषा ग्रन्थमाला

४२

प्राकृत साहित्य का इतिहास

(ईसवी सन् के पूर्व पाँचवीं शताब्दी से ईसवी
सन् की अठारहवीं शताब्दी तक)

डॉक्टर जगदीशचन्द्र जैन, एम. ए., पी-एच. डी.
(भूतपूर्व प्रोफेसर, प्राकृत जैन विद्यापीठ, मुजफ्फरपुर-बिहार)
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, रामनारायण रुइया कॉलिज, बंबई

चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी

प्रकाशक : चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी
मुद्रक : विद्याविलास प्रेस, वाराणसी
संस्करण : प्रथम, वि० संवत् २०१८
मूल्य : २०-००

© The Chowkhamba Vidya Bhawan
Chowk, Varanasi.
(INDIA)
1961
Phone : 3076

THE
VIDYABHAWAN RAS'TRABHASHA GRANTHAMALA
42

HISTORY OF PRAKRIT LITERATURE

(From 500 B. C. To 1800 A. D.)

By

DR. JAGADISH CHANDRA JAIN, M. A. Ph. D.

(Sometime Professor at Vaishali Institute of Post graduate studies in Prakrit, Gainology and Ahimsa, Muzaffarpur–Bihar)

HEAD OF THE DEPARTMENT OF HINDI
RAMNARAIN RUIA COLLEGE
BOMBAY.

THE
CHOWKHAMBA VIDYA BHAWAN
VARANASI-1

1961] [Rs. 20-00

THE
CHOWKHAMBA VIDYABHAWAN
POST BOX NO. 69, VARANASI-1
INDIA.
1961

मुनि जिनविजय जी

और

मुनि पुण्यविजय जी

को

सादर समर्पित

भूमिका

भारत के अनेक विश्वविद्यालयों में प्राकृत का पठन-पाठन हो रहा है लेकिन उसका जैसा चाहिये वैसा आलोचनात्मक क्रमबद्ध अध्ययन अभी तक नहीं हुआ। कुछ समय पूर्व हर्मन जैकोबी, वैबर, पिशल और शूब्रिंग आदि विद्वानों ने जैन आगमों का अध्ययन किया था, लेकिन इस साहित्य में प्रायः जैनधर्म संबंधी विषयों की चर्चा ही अधिक थी इसलिये 'शुष्क और नीरस' समझ कर इसकी उपेक्षा ही कर दी गई। जर्मन विद्वान् पिशल ने प्राकृत साहित्य की अनेक पांडुलिपियों का अध्ययन कर प्राकृत भाषाओं का व्याकरण नामक खोजपूर्ण ग्रंथ लिखकर इस क्षेत्र में सराहनीय प्रयत्न किया। इधर मुनि जिनविजय जी के संपादकत्व में सिंघी सीरीज़ में प्राकृत साहित्य के अनेक अभिनव ग्रंथ प्रकाशित हुए। भारत के अनेक सुयोग्य विद्वान् इस दिशा में श्लाघनीय प्रयत्न कर रहे हैं जिसके फलस्वरूप अनेक सांस्कृतिक और ऐतिहासिक महत्त्वपूर्ण उपयोगी ग्रंथ प्रकाश में आये हैं। लेकिन जैसा ठोस कार्य संस्कृत साहित्य के क्षेत्र में हुआ है वैसा प्राकृत साहित्य के क्षेत्र में अभी तक नहीं हुआ। इस दृष्टि से प्राकृत साहित्य के इतिहास को क्रमबद्ध प्रस्तुत करने का यह सर्वप्रथम प्रयास है।

कलिकाल सर्वज्ञ के नाम से प्रख्यात आचार्य हेमचन्द्र के मतानुयायी विद्वानों की मान्यता है कि प्राकृत संस्कृत का ही अपभ्रष्ट रूप है। लेकिन रुद्रट के काव्यालंकार (२.१२) के टीकाकार नमिसाधु ने इस संबंध में स्पष्ट लिखा है—"व्याकरण आदि के संस्कार से विहीन समस्त जगत् के प्राणियों के स्वाभाविक वचन व्यापार को प्रकृति कहते हैं; इसी से प्राकृत बना है। बालक, महिलाओं आदि की यह भाषा सरलता से समझ में आ सकती है और समस्त भाषाओं की यह मूलभूत है। जब कि मेघधारा के समान एकरूप और देशविशेष या संस्कार के कारण जिसने विशेषता प्राप्त

की है और जिसके सत् संस्कृत आदि उत्तर विभेद हैं उसे संस्कृत समझना चाहिये।" आचार्य पाणिनि ने वाङ्मय की भाषा को छन्दस् और लोकभाषा को भाषा कहा है, इससे भी प्राकृत की प्राचीनता और लोकप्रियता सिद्ध होती है। वैदिक काल से जनसामान्य द्वारा बोली जाती हुई इन्हीं प्राकृत भाषाओं में बुद्ध और महावीर ने साधारण जनता के हितार्थ अपना प्रवचन सुनाया था।

बुद्ध और महावीर के पूर्व जनसामान्य की भाषा का क्या स्वरूप था, यह जानने के हमारे पास पर्याप्त साधन नहीं हैं। लेकिन इनके युग से लेकर ईसवी सन् की १८ वीं शताब्दी तक प्राकृत साहित्य के विविध क्षेत्रों में जो धार्मिक आख्यान, चरित, स्तुति, स्तोत्र, लोककथा, काव्य, नाटक, सट्टक, प्रहसन, व्याकरण, छंद, कोष, तथा अर्थशास्त्र, संगीतशास्त्र, सामुद्रिकशास्त्र आदि शास्त्रीय साहित्य की रचना हुई वह भारतीय इतिहास और साहित्य की दृष्टि से अत्यन्त उपयोगी है।

संस्कृत सुशिक्षितों की भाषा थी जब कि जनसामान्य की भाषा होने से प्राकृत को बाल, वृद्ध, स्त्रियाँ और अनपढ़ सभी समझ सकते थे। ईसवी सन् के पूर्व ५वीं शताब्दी से लेकर ईसवी सन् की ५वीं शताब्दी तक जैन आगम-साहित्य का संकलन और संशोधन होता रहा। तत्पश्चात् ईसवी सन् की दूसरी शताब्दी से १६वीं शताब्दी तक इस साहित्य पर निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णी और टीकायें लिखकर इसे समृद्ध बनाया गया। अनेक लौकिक और धार्मिक कथाओं आदि का इस व्याख्या-साहित्य में समावेश हुआ।

ईसवी सन् की चौथी शताब्दी से १७वीं शताब्दी तक कथा-साहित्य संबंधी अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रंथों की रचना हुई। ११वीं १२वीं शताब्दी का काल तो विशेष रूप से इस साहित्य की उन्नति का काल रहा। इस समय गुजरात में चालुक्य, मालवा में परमार तथा राजस्थान में गुहिलोत और चाहमान राजाओं का राज्य था और इन राजाओं का जैनधर्म के प्रति विशेष अनुराग था। फल यह हुआ कि गुजरात में अणहिल्लपुर पाटण, खंभात, और भडौंच, राजस्थान

में भिन्नमाल, जाबालिपुर और चित्तौड़ तथा मालवा में उज्जैन, ग्वालियर और धारा आदि नगर जैन श्रमणों की प्रवृत्तियों के केन्द्र बन गये।

ईसवी सन् की पहली शताब्दी से लेकर १८वीं शताब्दी तक प्रेम और शृंगार से पूर्ण प्राकृत काव्य की रचना हुई। यह साहित्य प्रायः अजैन विद्वानों द्वारा लिखा गया। मुक्तक काव्य प्राकृत साहित्य की विशेषता रही है, और संस्कृत काव्यशास्त्र के पंडित आनन्दवर्धन आदि विद्वानों ने तो मुक्तकों की रचना का प्रथम श्रेय संस्कृत को न देकर प्राकृत को ही दिया है। प्रेम और शृंगारप्रधान यह सरस रचना हाल की गाथासप्तशती से आरंभ होती है। आगे चलकर जब दक्षिण भारत साहित्यिक प्रवृत्तियों का केन्द्र बना तो केरलदेशवासी श्रीकंठ और रामपाणिवाद आदि मनीषियों ने अपनी रचनाओं से प्राकृत साहित्य के भंडार को संपन्न किया।

ईसवी सन् की प्रथम शताब्दी से १८वीं शताब्दी तक संस्कृत-नाटकों की रचना का काल रहा है। इस साहित्य में उच्च वर्ग के पुरुष, राजा की पटरानियाँ, मंत्रियों की कन्यायें आदि पात्र संस्कृत में, तथा स्त्रियाँ, विदूषक, धूर्त, विट और नौकर-चाकर आदि पात्र प्राकृत में संभाषण करते हैं। कर्पूरमञ्जरी आदि सट्टक-साहित्य में तो केवल प्राकृत का ही प्रयोग किया गया। इससे यही सिद्ध होता है कि दर्शकों के मनोरंजन के लिये नृत्य के अभिनय में प्राकृत का यथेष्ट उपयोग होता रहा।

संस्कृत की देखादेखी प्राकृत में भी व्याकरण, छन्द और कोषों की रचना होने लगी। ईसवी सन् की छठी शताब्दी से १८वीं शताब्दी तक इस साहित्य का निर्माण हुआ। मालूम होता है कि वररुचि से पहले भी प्राकृत व्याकरण लिखे गये; लेकिन आजकल वे उपलब्ध नहीं हैं। आनन्दवर्धन, धनंजय, भोजराज, रुय्यक, मम्मट, हेमचन्द्र, विश्वनाथ आदि काव्यशास्त्र के दिग्गज पंडितों ने प्राकृत भाषाओं की चर्चा करने के साथ-साथ, अपने ग्रंथों में प्रतिपादित रस और अलंकार आदि को स्पष्ट करने के लिये, प्राकृत काव्यग्रंथों